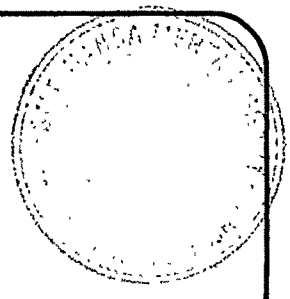

Chapter-7

सप्तम अध्याय :

उपसंहार

सप्तम अध्याय :

उपसंहार

उपसंहार :

प्रस्तुत शोध प्रबंध में आलोच्य विषय - **''साठोत्तरी हिन्दी गीतों एवं नवगीतों में संस्कृति एवं संवेदना के विविध आयाम''** पर विस्तार से शोध परख चर्चा की गई है। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि नवगीतों में 'गीति' तत्व की सन्निहित उसे उत्तरोत्तर विकसित सोच एवं चिंतन के सोपानों पर अग्रसरित अवश्य करती है, किन्तु उसकी काव्यगति रागात्मक पहचान को हम 'गीत' संज्ञा से अलग नहीं कर सकते।

वैसे तो साहित्य की समग्र विधाओं में समय के बदलते जीवन मूल्यों ने एक अपेक्षित एवं सामयिक परिवर्तन को स्वीकार किया है। जिसमें साहित्य का वर्ण्य एवं प्रस्तुति दोनों में बदलाव देखा जा सकता है। नव-जागरणकाल में गीत की मध्यकालीन सोच परिवर्तित हो चुकी थी। दरबारी आश्रय एवं अनुबंधन में ग्रस्त गीत राजाश्रय की सारी दीवालों को तोड़कर जनप्रांगण में आ चुका था। रचनाकार आम आदमी के रूप में अपनी सहज एवं सामान्य जिन्दगी के लेखा-जोखा व्यक्त कर रहा था। संस्कृति एवं संवेदना की सन्निहति मध्यकाल में भी थी और वर्तमान काल में भी। परतंत्र देश की मजबूरियाँ और प्रतिबद्धताएँ साहित्य में अपने आयाम निश्चित कर चुकी थी। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि मध्यकाल की कविता में दीवान-ए-आम का प्रतिनिधित्व नहीं था, बल्कि दीवाने-ए-खास की गुप्त, मांसल एवं स्थूल

चर्चाएं अधिक थी। संपूर्ण रीतिकाल में नारी के दैहिक सौंदर्य को काव्य का वर्ण्य निश्चित किया गया। कहाँ नायिका-भेद के विविध विकासमयी छिछले उद्‌गार और नख-शिख वर्णन की ओट में नारी के अंग-उपांगों का मांसल एवं वासना-जन्य वर्णन अधिकांश कवियों ने किया है। जहाँ कभी वर्ण्य विषय की इस पूर्वाग्रही संयोजना से किंचित अलग भी हुआ है तो वहाँ वह कविता की शाब्दिक सज्जा के मोहजाल से छूट नहीं पाया है।

विगत अध्यायों में मैंने विस्तार से इस परिवेश के सांस्कृतिक एवं संवेद्य कथ्यों पर ध्यानाकर्षित किया है। इस संपूर्ण मध्यकाल में व्यक्ति के दैहिक सौंदर्य को केन्द्र में स्थापित किया गया है। वह सौंदर्य परकीया नायिका का, रूपजीवी, नर्तकियों का अथवा कल्पनाजीवी सुंदर नायिकाओं का रहा है। इस स्थूल वर्णन में जहाँ भक्ति का संदर्भ आया है वहाँ कवियों ने राधा-कृष्ण को भी भौतिक नायक-नायिकाओं के रूप में ही ग्रहण किया है।

प्रकारान्तर से तत्कालीन समाज का सांस्कृतिक परिवेश इन गीतों में अवश्य व्यक्त हुआ है। राजा महाराजाओं की विलास दृष्टि रनिवासों, हरम एवं जनानखानों की विगलित अवस्था एवं नारी-प्रताड़ना की लंबी व्यथा-कथा उस समय के सांस्कृतिक परिवेशों के साथ-साथ संवेदना के धरातल पर भी पाठकों का ध्यान आकर्षित करती है।

गीतों की यह अतिरंजना, सौंदर्य वर्णन के नाम पर मांसल विलास दृष्टि का संकुचन एवं कुत्सित आश्रय दाताओं की हीनदृष्टि को ही प्रस्तुत करता है। गीतों में यह स्थूल वर्णन काव्य रचना के क्षेत्र में इतना रूढ़ हो गया कि तत्कालीन अधिकांश समर्थ कवि इस निर्धारित परिपाटी पर आगे बढ़ते रहे। मुख्य रूप से कहा जा सकता है कि मध्यकालीन गीत में आम आदमी की उपस्थिति नहीं थी। वधुओं, नृयांगनाओं, परकीयाओं, प्रेमिकाओं एवं रूपजीवी वेश्याओं का ही अधिक वर्णन है। घर-गृहस्थ की परणीता वधुओं, बहन-बेटियों अथवा अन्य परिजनों का इन साहित्यकारों से जैसे कोई सरोकार ही नहीं था।

छायावाद के प्रारंभ से ही मध्याकालीन साहित्यत्यिक सोच का किला ध्वस्त होने लगा था। हिन्दी गीत जो अब तक वायन्वी पंखों पर गगनचारी बना हुआ था वह एक झटके में जमीन पर आ गया। गीतों का समूचा सांस्कृतिक कलेवर ही बदल चुका था। संवेदनाओं के मानदंड

परिवर्तित हो चुके थे। अब कविता का वर्ण्य नायिकाओं पर केन्द्रित नहीं था, किन्तु सौन्दर्यवादी दृष्टिकोण ने प्रकारान्तर से परकीया एवं प्रेमिकाओं से नाता नहीं तोड़ा था। वर्तमान के प्रारंभ से छायावाद तक व्यक्ति नितांत आत्म संवेदनाओं को ही गले से लगाये रखने में व्यग्र दिखाई देता है। छायावाद कविता में सांस्कृतिक परिवेश या तो वैयक्तिक संवेदनाओं के प्रभाव में संकुचित रह गया था अथवा उसका संपूर्ण सांस्कृतिक परिवेश पलायनवाद की स्थिति में आकर समाज से हटकर प्रकृति के अंक में समाहित हो गया था। इस तरह हम देख सकते हैं कि छायावादी गीतों में या तो प्रकृति के प्रति सम्मोहन व्यक्त हुआ है, या फिर वह नितांत वैयक्तिक संवेदनाओं में डूब गया है। वैचारिक संकुचन की इस प्रक्रिया में गीत का कद बहुत छोटा रह गया था।

नवजागरण काल से बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक स्वतंत्रता संग्राम की जो ऊष्मा राष्ट्रीय एवं सामाजिक स्तर पर व्याप्त थी, उसका संस्पर्श देखा जा सकता है। राष्ट्रीय गीत एवं देशप्रेम के गीत जो उस समय के समाज के समूचे सांस्कृतिक मूल्यों की बदल रहे थे उनकी बहुत गहरी छाप इन गीतों पर नहीं पड़ी। इस तरह मानवीय संवेदनाओं से रहित आम आदमी की साझेदारी इन गीतों में नहीं हो पाई। और समूचा सांस्कृतिक कथ्य पुरावाचिक चौखट में ही कैद हो गया तब नई सोच मानवीय संवेदनाओं के अनन्त विस्तारों ने नवगीत की जरूरत को सामने रखा।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध में हमने गीतों और नवगीतों के इस संक्रमण को, कथ्य और प्रस्तुति को तथा इसके अंतराल को विस्तार से सुस्पष्ट करने का यत्न किया है। आवश्यकतानुसार गीत और नवगीत के वृत्त को भी पारिभाषितच किया है और निराला से लेकर उत्तर-आधुनिक काल तक के समूचे कालखंड में व्याप्त नवगीतों में संवेदनाओं की जमीनपर अपने कथ्य को विवेचित किया है।

गीतों एवं नवगीतों के संदर्भ में हमने बिना किसी पूर्वाग्रह के यथोपलब्ध गीतकारों एवं नवगीतकारों के परिचयात्मक विवरण के साथ उनकी रचनात्मक वृत्तियों को भी सामने रखा है। हमारा अभीष्ट कथ्य गीतों एवं नवगीतों के धरातल पर स्थापित और परिवर्तित सांस्कृतिक मूल्यों के परीक्षण के साथ-साथ सतत परिवर्तित मानवीय संवेदनाओं की विविध स्थितियों के

साथ गीत एवं नवगीत की यात्राओं पर भी अपना मंतव्य व्यक्त करना रहा है।

वस्तुतः गीतों का रूढ़ वृत्त नवगीतों की सामयिक संचेतना का अन्तराल ही हमारे सामने सांस्कृतिक मूल्यों के विघटन एवं उनके परिवर्तित प्रस्तार को स्पष्ट करता है। यहाँ हमारा आलोच्य विषय गीतों एवं नवगीतों की परिधि तक ही सीमित नहीं था, बल्कि इन गीतों एवं नवगीतों के तमाम परिचर्चित पड़ावों पर संस्कृति एवं संवेदना के बदलते आयामों को विवेचित करना ही था। शोध-प्रबंध के केन्द्रीय वृत्त में हमने चेष्टा की है कि हिन्दी गीतों एवं नवगीतों के प्रतिनिधि हस्ताक्षरों को अपने आलोच्य विषय के विवेचन के साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत करें।

हिन्दी गीतों एवं नवगीतों पर विवरण एवं विवेचन की दृष्टि से अनेक शोध कार्य सम्पन्न हो चुके हैं, किन्तु सांस्कृतिक एवं संवेदना के धरातल पर इस विधा की विवेचना यहाँ प्रथम बार ही प्रस्तुत की जा रही है। हालांकि संवेदना का धरातल कहीं अधिक विस्तृत है किन्तु शोध-प्रबंध की सीमा को देखते हुए सारगर्भित रूप में एवं मौलिक चिंतन के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने की मैंने चेष्टा की है।

इस शोध-प्रबंध के विवेचित वृत्त से भविष्य के शोधार्थी लाभान्वित होंगे तथा गीत एवं नवगीत के अध्ययन के संदर्भ में नये क्षितिज खुलेंगे और नई संभावनाओं के प्रस्तार भी सामने आयेंगे।